chapter-2

द्वितीय अध्याय

महाकवि निराला - एक दार्शनिक कवि

प्राक्कथन : प्रथम अध्याय के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निरालाजी एक महाव्यक्तित्व सम्पन्न कवि थे, तथा दार्शनिकता उनकी कविचेतना का एक प्रमुख लक्षण था. वस्तुतः उनके व्यक्तित्व में 'दार्शनिक' और 'कवि' का विशिष्ट समन्वय दृष्टिगत होता है, और निरालाजी के व्यक्तित्व की ये ही दो विशेषताएँ उनके जीवन और साहित्य में संपूर्ण रूप से व्याप्त हैं. उचित ही है कि आ. नन्ददुलारे बाजपेयी ने निरालाजी को खडी बोली हिन्दी का 'प्रथम दार्शनिक कवि' कहा है.[१] अतः प्रस्तुत अध्याय में दार्शनिक कवि के स्वरूप स्पष्ट करते हुए हिन्दी के दार्शनिक कवियों की परम्परा का अनुशीलन कर उक्त परम्परा में निरालाजी का स्थान निश्चित करने का प्रयास किया जायगा. अतः प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन-क्रम निम्नलिखित रखा जा सकता है.

१ - 'कवि' की व्याख्या

२ - कवि- स्वरूप, प्रकार, और वर्गीकरण.

---

१ - बाजपेयी नंददुलारे - हिंदी साहित्य -२० वी शताब्दी-१९४९, पृष्ठ १४२.

३ - दार्शनिक कवि और दार्शनिक कवि के भेद.
४ - हिन्दी में दार्शनिक कवियों की परम्परा,
५ - छायावाद-युग का दार्शनिक पक्ष, एवं हिन्दी की दार्शनिक कवि परम्परा में निरालाजी का स्थान.
६ - उपसंहार.

१ - कवि की व्याख्या :

१-१ कवि शब्द की व्युत्पत्ति और प्रयोग :

प्राचीन तथा आर्वाचीन भारतीय भाषाओं में सृजनात्मक साहित्य के लेखक को सामान्यत: कवि शब्द से अभिहित किया गया है. वैसे कवि शब्द उक्त अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थों का भी द्योतन करता है. वस्तुत: इस शब्द की अर्थसम्पदा अपने विशेष इतिहास के कारण है. मूलत: वैदिक-संस्कृत साहित्य में यह शब्द मिलता है. ऋग्वेद में एक ऋषि का नाम कवि बताया गया है.[१] वैदिक - साहित्य में कहीं कवि को ऋतपालक एवं देवों का सहचर कहा गया है,[२] तथा अन्यत्र कवि को परम ब्रम्ह,[३] एवं ऋषि[४] भी कहा गया है. इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी कवि शब्द का उल्लेख कई रूपों में किया गया है.[५]

---

१ - तुल : अ -ऋग्वेद -१-११६-१४: आ लक्ष्मणसरूप-ऋगर्थ दीपिका,१-६१४.
२ - त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावन: कवय: पूर्व्यास: ऋग्वेद,७-७६-४.
३ - तुल: "कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू". -यजुर्वेद, अ.४०,म. ८.
४ - "एते वै कवयो यहृषाय:". शतपथ ब्राम्हण , १-४-२-८.
५ - तुल: ऋग्वेद, १-९१-१४; १-२-९, १-११-४, १-९५-८, तैसं, ४-३-११-३, वासं, २८-३०, २८-३४, इत्यादि.

( )

निरूक्तकार ने कवि शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बतायी है. -१- कवि: क्वते:, २- कवि: क्रान्तदर्शनो भवति, जो क्रमश: 'कु' और 'क्रम' धातुओं से कवि शब्द को निष्पन्न करती है.[1] यास्क ने कु धातु का कोई अर्थ नही बताया है, परंतु निघंटु में यह धातु गत्यर्थक धातुओं में परिगणित की गई है.[2] परंतु पाणिनि के धातुपाठ में कु शब्दो इस प्रकार अर्थ बताया गया है. वस्तुत: कु धातु मूल भारतीय भाषा की एक प्राचीन धातु है,[3] जिसका अर्थ विद्वानों ने To pay heed to बताया है. आशय यह कि कवि शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में अत्यंत प्राचीन काल से विविध अर्थों मे मिलता है.

परवर्ती काल में यह शब्द उक्त अर्थों की परम्परा से पूर्णता मुक्त न होते हुए भी मुख्यत: काव्यकार के अर्थ में प्रयुक्त होता हुआ दिखाई देता है.[4] संस्कृत के कोषकारों ने कवि शब्द की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या इस प्रकार की है- 'कवि:- पुं. क्वते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति, सर्वं सर्वतो गच्छति वा. क्व् इन. यद्वा कुशाद्धे, 'अच इ:' इति इ.[5] तात्पर्य यह कि भारतीय विद्वानों ने उस व्यक्ति को कवि शब्द से अभिहित किया है जो सर्वज्ञ, अर्थात् बहुज्ञ एवं चिन्तनशील, वर्णनकर्ता, अर्थात अभिसृष्टा एवं अभिव्यक्ता, तथा सर्वगतिमान हो. इसी तथ्य को संस्कृत सुभाषितकार ने - 'अपारे खलु संसारे कविरेक: प्रजापति....' आदि शब्दो मे

---

१ - यास्क - निरूक्त - १२-१३.
२ - नि घंटु - २-१४.
३ - Verma Siddheshwar - Etymologies of Yaska - 1953 - PP 75-112
४ -अ. तुल: अ- मन्द: कवियश: प्रेप्सु - रघु:
५ - आ. नैकभोज: प्रसादो वा रसभावाविद: कवे: - माघ
हला युध - कोष - पृष्ठ २१४.
तुल: वाचस्पत्यम् खन्ड ३ पृष्ठ १८२१-१८२२

व्यक्त किया है, तथा हिंदी के किसी जनकवि ने इस रूप में कहा है -
' जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि '.

Poet शब्द ग्रीक भाषा के Poet-ic शब्द से निकला है.[1] लेटिन में उसके लिये Poeta शब्द है जिसका अर्थ पद्य-सृष्टा होता है.[2] इसके लिये ग्रीक भाषा में ποιητής शब्द है, जिसका अर्थ सृष्टा या कर्ता है.[3] आधुनिक अंग्रेजी के Poet शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ भी लगभग उक्त आशय से मिलता-जुलता है.[4]

१ - कवि, स्वरूप, प्रकार और वर्गीकरण:-

२-१ भारतीय दृष्टि :- संस्कृत के काव्यशास्त्र से संबंधित अनेक ग्रंथों में, कवि के स्वरूप, गुण, तथा प्रकार आदि की चर्चा के साथ साथ कवि की दिनचर्या तक का सविस्तार वर्णन मिलता है.[5] आ. राजशेखर के काव्य मीमांसा तथा आ. क्षेमेन्द्र के कविकण्ठाभरण नामक ग्रंथों मे उक्त विषयों का सविस्तार निरूपण किया गया है.[6]

संस्कृत के उक्त आचार्यों के अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्होंने कवि के लिये आवश्यक समस्त गुणों में ' प्रतिभा ' और ' व्युत्पत्ति ' इन दो गुणों को मूलत: आवश्यक माना है. आशय यह कि प्रतिभा और

---

१ Skeat Walter W. -An Etymological Dictionary of the English Langudage, Oxford II nd Edition P. 453.
२ Ibid.
३ Ibid.
४ अ. Ibid.
अ. तुल :-
५ तुल:राजशेखर -कवि मीमांसा १० वाँ अध्याय.
६ तुल: झा. गंगानाथ -कविरहस्य . आ उपोद्घात पृ १.आ तुल हिंदी साहित्य कोष भा. २०८.

व्युत्पत्ति के अभाव में अन्य कव्युचित (कवि + उचित) गुणों के होते हुए भी, किसी व्यक्ति को कवि शब्द से अभिहित नहीं किया जा सकता. अत: जिसमें प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों हैं, वही कवि माना गया है.[1]

काव्य हेतु की चर्चा करते समय कुछ आचार्यों ने प्रतिभा और व्युत्पत्ति के साथ साथ अभ्यास का उल्लेख भी किया है.[2] उनके अनुसार प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास नामक काव्य-हेतु जिस व्यक्ति-विशेष में हों, उसे कवि कहा जा सकता है.[3] कुछ आचार्यों ने उक्त तीनों काव्य हेतुओं को स्वतंत्र रूप में स्वीकृत करते हुए उनका समान महत्व माना है. आ. मम्मट ने इन तीनों को सामूहिक रूप से महत्व प्रदान करते हुए उन्हें सम्मिलित रूप में कारण माना है. कतिपय आचार्यों के अपवाद के साथ, संस्कृत तथा हिंदी के सभी आचार्यों ने प्रतिभा, अभ्यास और निपुणता को किसी न किसी रूप में स्वीकृत अवश्य किय है, तथा अधिकांश आचार्यों का अभिमत है कि प्रतिमा ही मूल कारण है. आ. राजशेखर के अनुसार काव्य के मूल में समाधि अर्थात् मन की एकाग्रता और अभ्यास (बाह्य प्रयत्न) दोनों रहते हैं. इन दोनों के द्वारा जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह प्रतिमा और व्युत्पत्ति के द्वारा काव्य रूप में परिणत होती है.[4]

---

१ - झा. गंगानाथ - कविरहस्य - पृष्ट २६.

२ - मम्ट - काव्यप्रकाश, श्लोक अ. (झा. गंगानाथ-कविरहस्य-पृष्ट १७)

३ - हिंदी साहित्य कोश स डा. धीरेन्द्र वर्मा पृष्ट-२२८ (प्रथम संस्करण)

४ - तुल: हिंदी साहित्य कोश सं. डा धीरेन्द्र वर्मा -पृष्ट-२२८ ,,

(   )

इस तथ्य को निम्न आकृति द्वारा और अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है -

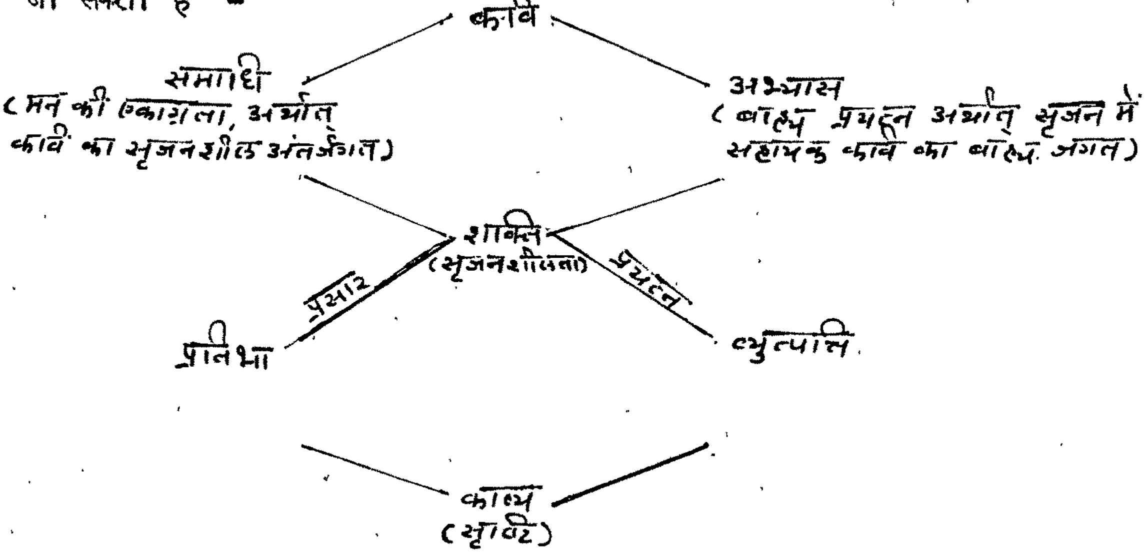

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि के स्वरूप के विषय में राजशेखर की उक्त धारणा, आधुनिक हिंदी में कवि के स्वरूप के विषय में प्रचलित धारणाओं से कुछ दृष्टियों में भिन्न है, क्यों कि उनका मूल स्रोत मुख्यतया पाश्चात्य साहित्य है. अत: उनके विषय में यहाँ विचार नहीं किया जा रहा (क्यों कि पाश्चात्य दृष्टि से कवि के स्वरूप के विषय में आगे विचार किया गया है).

कवि-शिक्षाकार आचार्यों ने कवि के स्वरूप आदि की चर्चा के साथ-साथ कवि -भेद के विषय में भी लिखा है. आ. राजशेखर ने कई

दृष्टियों से कवि के भेद बताये हैं. जिस प्रकार उन्होंने काव्य-कारण की दृष्टि से (१) सारस्वत (२) आभ्यासिक, तथा (३) औपदेशिक नामक तीन भेद बताये हैं.[१] उसी प्रकार कवि की विशिष्ट योग्यता की दृष्टि से - १- शास्त्र-कवि, २- काव्य-कवि, ३- शास्त्रोभय-कवि, नामक तीन भेद बताये हैं.[२] इसके अतिरिक्त शास्त्र और काव्य-शास्त्र की दृष्टि से भी कवि पुनः भेद आदि किये गये हैं.[३] हिंदी के रीति-आचार्य केशवदास[४] ने उत्तम, मध्यम, अधम - इस रूप में कवि-भेद का निर्देश किया है. परंतु वह विशेष उल्लेखनीय नहीं है.

कवि विषयक भारतीय दृष्टि के अंतर्गत आ. राजशेखर द्वारा प्रस्तुत कवियों के तीन प्रकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो कवि के व्यक्तित्व अर्थात् कवि की योग्यता को दृष्टि मे रखकर बताये गये हैं. यथा १- शास्त्र कवि, अर्थात् जिस कवि की योग्यता शास्त्र में अधिक हो, २- काव्य-कवि, अर्थात् जिस कवि की योग्यत शास्त्रकी अपेक्षा काव्य में अधिक हो ; ३- शास्त्रोभय - कवि, अर्थात जो कवि शास्त्र तथा काव्य दोनों में योग्यता रखता हो, अथवा दोनों मे निष्णात् हो.[५] इन तीनों की श्रेष्ठता को लेकर आचार्यों में मत भेद दिखायी देता है. आ. श्यामदेव के अनुसार उत्तरोत्तर तीनों कवि-श्रेष्ठ है.[६] परंतु इसके विपरीत आ. राजशेखर, अपने - अपने क्षेत्र में तीनों को श्रेष्ठ मानते है. यद्यपि उनकी दृष्टि

१- राजशेखर - काव्यमीमांसा अ. ४.
२- वही - बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद पटना द्वारा सन १९५४में प्रकाशित संस्करण पृष्ट ४०.
३- तुल: वही अ. ५.
४- केशवदास - कवि-प्रिया - ४-२.
५- राजशेखर-काव्यमीमांसा-पटना संस्करण पृ-४०.
६- वही - पृष्ट- ४०.

में शास्त्रोभय - कवि दोनों में पारंगत है, अत: वह शास्त्र-कवि एवं काव्य-कवि की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है. इसका कारण यह कि आ. राजशेखर शास्त्र और काव्य दोनों को एक दूसरे का उपकारक मानते हैं.[1]

आशय यह कि श्रेष्ठ कवि वही है जिसे काव्यज्ञान के साथ शास्त्र-ज्ञान भी हो, अर्थात् जिसके व्यक्तित्व में भाव-पक्ष तथा चिंतन-पक्ष-दोनो का समुचित समन्वय हो.[2] इस कोटिका कवि ही श्रेष्ठ होने के साथ महान कवि भी होता है.

२-२ पाश्चात्य दृष्टि : कवि के स्वरूप तथा भेद आदि के विषय में जैसा शास्त्रीय विवेचन भारतवर्ष में मिलता है, है, वैसा शास्त्रीय तथा स्वतंत्र विवेचन पश्चिम में प्राप्त नहीं होता. पश्चिम के विद्वानों ने काव्य संबंधी ग्रंथों में ही यत्र-तत्र कवि के व्यक्तित्व तथा उसके प्रकार आदि के विषय में विचार किया है. अत: उक्त विषय पर प्रसंगोपात् व्यक्त किये गये पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का अनुशीलन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है.

प्लेटो एवं अरस्तू के पुरोगामी ग्रीक साहित्य में, साहित्य समीक्षा संबंधी सूत्रों के जो संकेत प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर अनुमान किया जा सकता है, कि ग्रीक विचारक प्रारंभ से ही कवि को एक विशिष्ट प्रतिभा-

---

१. वही - ५-४०, राजशेखर - काव्यमीमांसा - पटना संस्करण - पृ. ४०

२. उद्ध: Eliot T. S. - Selected Prose - 1953 - Ed. by Hayward John - P. 26

प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति मानते थे।[१] प्राक् - प्लेटो युग में जिस प्रेरणा के सिध्दान्त की चर्चा विद्वानों ने की है,[२] उसके आधार पर कहा जा सकता है कि कवि-व्यक्तित्व में, प्रेरणा प्राप्त करने और तदनुसार अभिव्यक्ति करने (जिसे ग्रीक विचारकों ने अनुकृति शब्द से ही सामान्यत: अभिहित किया है) की दो क्षमताएं विशेष रूप से मानी जाती थी. परवर्ती ग्रीक विचारकों न यद्यपि समीक्षा के क्षेत्र में नवीन सिध्दान्तों की स्थापना की, परंतु उक्त प्रेरणा के सिध्दान्त को किसी ने नकारा नहीं है. प्लेटो ने जहाँ कवि को अनुकर्ता कहा[३] है, वहीं उसने कवि की प्रेरणाओं के विषय में भी चर्चा की है. उसने कहा है कि कवि किसी दिव्य प्रेरणा से परिचालित न हो. अपने उद्दाम आवेगों, एवं क्षुद्र भावों से परिचालित होकर ही काव्य - रचना करता है. इस काव्य रचना को उसने सत्य से तीन कदम परे माना है.[४] उसके अनुसार काव्य-रचना के मूल में न कोई दिव्य प्रेरणा होती है, न उसका प्रभाव ही श्रेयस्कर होता है.[५]

प्लेटो की काव्य - संबंधी धारणा के विषय में प्रसिध्द विद्वान James - Scott ने कहा है कि नैतिकता वादी होने के नाते प्लेटो काव्य को अमान्य घोषित इसलिये करता है क्योंकि वह उसे अनैतिक मानता है, और दार्शनिक होने के नाते वह काव्य को अस्वीकृत[६] इसलिये करता है, क्योंकि वह उसे असत्य पर आधारित मानता है.

---

१ - दीक्षित भगीरथ-समीक्षालोक पृष्ठ १५०-१९६४.

२ - Lane COoper-Artistotle on The Art of Poetry - p.31. Ed- Schorer Mark and others-CRITICISM- the Foundation of Modern Literary Judgment- P. 9

३ - Ibid - P. 6-7

४ - तुल: Ibid - P.2,6   ५ - तुल: Ibid. P.2,6

६ - James - scott - the Making of Literature - P.

कवि की दृष्टि से, इसी बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि नैतिकतावादी होने के नाते प्लेटो कवि का विरोध इसलिये करता है, क्यों कि वह कवि को अनैतिक मानता है,[1] तथा दार्शनिक होने के नाते वह कवि का विरोध इसलिये करता है क्यों कि वह उसे असत्यदृष्टा, और असत्यवादी मानता है।[2]

प्रसिध्द ग्रीक विचारक अरस्तू ने, कवि के व्यक्तित्व के विषय में प्लेटो की उक्त धारणा का विरोध किया. उसने ग्रीक के प्राचीन प्रेरणा-सिध्दान्त की नवीन तर्कों के आधार पर पुन:प्रतिष्ठा की. उसने अपने अलंकार शास्त्र (Poetics) में, अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कविता, प्रेरणा की सृष्टि है।[3] अरस्तु ने इस प्रेरणा को प्राचीन ग्रीक विचारकों के समान मूलत: दिव्य ही माना है. परंतु उसके अनुसार सभी कवियों को प्रेरणा समान रूप में प्राप्त नहीं होती, कवियों के स्वभाव -भेद के आधार पर वह कार्य करती है।[4] इस तथ्य के आधार पर उसने कवियों के दो - प्रकार भी बताये हैं. १- वे महान और मनीषी कवि जो सजाग रूप से उच्चतर विवेक द्वारा काव्य-सृजन करते हैं. २- वे कवि जो प्रमादी स्थिति में आवेग और भावना द्वारा परिचालित होते हैं.[5]

---

१ - तुल: Criticism-The Foundation of Modern Literary Indgment Ed. Mark Schorer & others-p.7.
२ - तुल: Ibid p.7.
३ - दिक्षित भगीरथ -समीक्षालोक पृ २३०.
४ - Lane Cooper-Artistotle on The Art of Poetry-1862,p,57.
५ - दीक्षित भगीरथ - समीक्षा लोक २३०.

अन्यत्र अरस्तू ने कवियों को परामर्श देते हुए, कवि-व्यक्तित्व में आवश्यक सजगता तथा अभ्यास नामक गुणों का उल्लेख किया है, तथा उसका यह दृढ मत था कि कला संबंधी उन सिध्दान्तों के ज्ञान के द्वारा कवि अपने कवि-कर्म को निभा सकता है, जिनका निरूपण उसने अपने अलंकार शास्त्र में किया है।[१] अरस्तू ने कवि को जहाँ इतिहासकार से श्रेष्ठ बताया है, वहाँ उसे द्रष्टा भी कहा है।[२]

अरस्तू की कवि विषयक धारणा के बहुत कुछ समान लौंजाइनस की मान्यता है। उसके अनुसार कवि, महान व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है, जिसमें शब्द और अर्थ के अलंकारों के प्रयोग का चातुर्य, उदात्त शैली की क्षमता, तथा उच्च कोटि का रचना-कौशल होता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन पाश्चात्य विचारकों ने कवि के विषय में तात्विक दृष्टि से विचार किया है। सामान्यतः इन विचारकों ने कवि के विषय में तात्विक दृष्टि से विचार किया है। सामान्यताः इन विचारकों ने कवियों का वर्गीकरण नहीं किया है, परंतु अरस्तू ने कवि-व्यक्तित्व के आधार पर कवियों का वर्गीकरण अवश्य किया है।

---

१ - तुल: वही-पृ. २३१. डॉ॰ नगेन्द्र - समीक्षालोक - पृ. २३१

२ - Inane Cooper -Aristotle on The Art of Poetry P.31.

३ -

( )

परवर्ती पाश्चात्य विचारकों में Sydny, Wodsworth, Johnson, Stephen Spender, Shelly, Vergenia Wolf, George Orwel, Ralf Fox, Alen Tate, Poe, Hulme, Arnold, Walter Patar, I.A. Richards

आदि विद्वानों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने काव्य के स्रोत अर्थात् कवि, तथा काव्य के प्रभाव का सविस्तार वर्णन किया है.[१] प्रत्येक विचारक के कवि विषयक विचारों का विशद विवेचन प्रस्तुत संदर्भ में संभव तथा वांछनीय न होने के कारण इन विचारकों की कवि विषयक कतिपय धारणाओंका उल्लेख किया जा सकता है.

सामान्यत: मध्यकालीन तथा अर्वाचीन पाश्चत्य विचारक मानते हैं कि, कवि में कल्पनाशक्ति, सहजानुभूति की क्षमता, कवित्व-बोध, सृजनशीलता, संवेदनशीलता आदि गुण होते हैं.[२] फिलिप्स सिडनी ने कवि को भविष्य-दृष्टा, निर्माता, या सर्जक के रूप में स्वीकार किया है, तथा उसके अनुसार कवि अत्यंत गुणवान तथा असामान्य व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है.[३] वर्डस्वर्थ ने भी कवि के असाधारण व्यक्तित्व की बात की है. उसके अनुसार कवि में भाव और बुध्दि की प्रौढता होती है, तथा उसमें तीव्र कल्पनाशक्ति भी होती है.[४] इसी प्रकार कॉलरिज कवि को सहज प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति मानता है. उसने कवि की इस सहज प्रतिभा से उत्पन्न इन चार गुणों का उल्लेख भी किया है. १- संपूर्ण

---

१ - Criricism- The Foundation of Modern Litarary Judgment Introduction P. VIII-IX.

२ - तुल - हिंदी साहित्य कोश

३ - अ - Sydney Philip- Criricism-The Foundation of Modern Literary Judgmnet P. 408-409, 411, 412.
आ तुल - दीक्षित भगीरथ - समीक्षालोक पृष्ट २९६

४ - Wordsworth William - CRITICISM - The Foundation of Modern Litarary Judgment - P. 35-37
आ - तुल: दीक्षित भगीरथ - समीक्षालोक - पृ - ३०२

१- संपूर्ण छंद या पद माधुर्य, २ - विषय की चयनात्मकता (जिसमें कवि का तादात्म्य या वस्तुपरकता अपेक्षित है) ३ - बिंब विधान, अर्थात् भिन्नत्व में अभिन्नत्व का गुण, ४ - गहन विचार शक्ति. आशय यह कि कॉलरिज महान कवि को महान् चिंतक होना भी आवश्यक मानता है।[१] स्टीफेन स्पेंडर के अनुसार कवि की ज्ञानेन्द्रियाँ सचेत होनी चाहिएँ, उसमें बिंब विधान की क्षमता होनी चाहिए. उसका भाषा पर अधिकार होना चाहिए, तथा सृजन के लिये आवश्य चित्त की एकाग्रता (Concentration) होनी चाहिए.[२] पॉल वालेरी ने भी कवि की दृष्टि से काव्य सृजन के लिये चित्त की एकाग्रता का महत्व स्वीकार किया है.

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिम में कवि के स्वरूप अर्थात् उसके व्यक्तित्व का विविध दृष्टियों से विचार किया गया है, परंतु अधिकांश विद्वानों ने कवियों के म वर्गीकरण के विषय में कुछ नहीं कहा है. अतः कवि-व्यक्तित्व तथा कवि-वर्गीकरण के विषय में स्वतंत्र रूप से आगे विचार किया जा सकता है.

---

१ - Coleridge S.T. - Biographia Literaria - 1817 - Chapter - XV
२ - Spender Stephen - CRITICISM - The Foundation of Modern Literary Judgement - P. 187-188
३ - Valery, Paul - The Art of Poetry - P. 94

२-२ आधुनिक दृष्टि : भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि से कवि के स्वरूप तथा वर्गीकरण आदि के विषय में उपरोक्त अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि कवि के स्वरूप अथवा व्यक्तित्व के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विचार कुछ अंशो तक समान है, परंतु कवि का वर्गीकरण जिस दृष्टि से भारतीय आचार्यों ने किया है, उस प्रकार का वर्गीकरण पाश्चत्य साहित्य में नहीं मिलता है। आशय यह कि भारतीय मनीषियों ने जहाँ कवि के लिये समाधि, अभ्यास, प्रतिभा, व्युत्पत्ति आदि गुणों का होना आवश्यक माना है, उसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने भी कवि मे कल्पना शक्ति (Imagination), सहजानुभूति की क्षमता (Intuitive Faculty) कवित्व-बोध (Poetic -Sense), आदि का होना आवश्यक माना है।[१]

आधुनिक दृष्टि से विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि कवि-व्यक्तित्व, अन्य कलाकारो के व्यक्तित्वों के समान मूलत: सृजन-शक्ति-सम्पन्न होता है। आ. राजशेखर ने कवि-भेद करते हुए यद्यपि कवि-व्यक्तित्व को दृष्टि में रखा है, परंतु वहा उनकी दृष्टि कवि-व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषता - सृजनशीलता पर न रहकर कवि के शास्त्र - काव्यादि ज्ञान पर रही है। अत: प्रस्तुत शोध की विशिष्ट दृष्टि के औचित्य - निर्वाह के हेतु आ. राजशेखर के वर्गीकरण को स्वीकार न कर, सृजनशीलता की दृष्टि के आधार पर नवीन कवि-वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

१- तुल: हिंदी साहित्य कोश - पृष्ठ -२२८.

( )

सृजनशीलता के आधार पर कवियों का वर्गीकरण करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संक्षेप में कवि की सृजनशीलता तथा उसकी सृष्टि, अर्थात् काव्य के विषय में विचार कर लिया जाय.

वस्तुत: नवीन, मौलिक, तथा मूल्यवान भाव, विचार, और वस्तु के निर्माण की प्रक्रिया का नाम ही सृजनशीलता है.[१] यह आवश्यक नहीं कि उक्त प्रक्रिया का परिणाम सदा मौलिक ही हो, वह पारम्परिक भी हो सकता है. परिणाम स्वरूप मौलिकता और पारम्परिकता के न्यूनाधिक्य के आधार पर कवियों को मूलत: दो दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है. १ - मौलिक, २- पारम्परिक.

सामान्यत: कवि-सृष्टि,अर्थात काव्य को 'रूप' (Form) और आशय (Content ') नामक दो गुणों या तत्वों का समान्वित रूप माना जाता है. इसीलिये काव्य का अध्ययन रूप और आशय की द्ध दृष्टि से किया जाता है. इस प्रकार कवि की सृजनशीलता और उसकी सृष्टिके आधार पर कवियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है.

सर्व प्रथम कवि की सृजनशीलता के आधार पर मूलत:, कवि के दो भेद किये जा सकते हैं. १- मौलिक, २ - पारम्पारिक. इन्हें रूप और आशय की दृष्टि से निम्नलिखित चार प्रकारों में विभक्त किया

---

१ - Smith Henry Clay - Personality Adjustment P. 383.

जा सकता है.

१ - रूप-मौलिक और आशय - मौलिक

२ - रूप-मौलिक और आशय -पारम्परिक

३ - रूप-पारम्परिक और आशय - मौलिक

४ - रूप-पारम्परिक और आशय -पारम्परिक

उक्त चार प्रकारों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

१- रूप तथा आशय मौलिक कवि : वे कवि जो काव्य के रूप तथा आशय दोनों क्षेत्रों में अपनी सृजनशीलता की मौलिकता का परिचय देते है. यथा हिंदी साहित्य के कबीर, सूर, तुलसी तथा निराला.

२ - रूप-मौलिक और आशय पारम्परिक कवि : - वे कवि जो काव्य के रूप के क्षेत्र में नवीनता या मौलिकता का परिचय देते है, परंतु उनके काव्य का आशय परम्पराप्राप्त होता है. इस वर्ग के अन्तर्गत हिंदी साहित्य के केशवदास तथा बिहारी आदि श्रेष्ठ रीतिकालीन कवियों को रखा जा सकता है.

३ - रूप - पारम्परिक-आशय-मौलिक कवि:- वे कवि जो काव्य के परम्परागत रूप का स्वीकार करते हुए, आशय के क्षेत्र में नवीन भावों एवं विचारों के योग द्वारा मौलिकता का परिचय देते है. हिंदी साहित्य के इतिहास में दृष्टिगत भारतेंदुकाल तथा द्विवेदी काल के उन संक्रमणशील कवियों को इस वर्ग के अंतर्गत रखा जा सकता है, जिन्होंने रीतिकालीन काव्य रूप द्वारा नवीन आशय की अभिव्यक्ति की. इसी प्रकार के अन्य कवि प्राचीन हिंदी साहित्य में भी मिलते है.

४- रूप-पारम्परिक, आशय-पारम्परिक कवि : - वे कवि जो रूप तथा आशय दोनों क्षेत्रों में काव्य-प्रतिभा रहित, सृजन का परिचय देते हैं. सामान्य रूप से ऐसे कवियों का साहित्य के इतिहास में उल्लेख नहीं होता.

२ - दार्शनिक कवि, और दार्शनिक कवि के भेद :

कवियों के उक्त वर्गीकरण को रूप और आशय के आधार पर और अधिक विस्तृत किया जा सकता है. प्रस्तुत अध्याय में दार्शनिक कवि के स्वरूप को समझाना आवश्यक है, अतः रूप की दृष्टि से विचार न कर, आगे आशय की दृष्टि से संक्षेप में विचार किया जा सकता है.

सिध्दान्ततः आशय के अनेक भेद माने जा सकते हैं, आशय भेद के अनुसार कवियों के भेद किये जा सकते है. पहले जैसे आशय-मौलिक और आशय-पारम्परिक भेद किये हैं, उसी प्रकार आशय के विषय के भेद के अनुसार आशय के भेद किये जा सकते है. उदाहरणार्थ जिस प्रकार किसी कवि के आशय का विषय यदि प्रकृति हो तो उसे प्रकृति - प्रेमी या प्रकृतिवादी कहते है, उसी प्रकार जिस कवि के आशय का विषय समग्रतः दर्शन हो, उसे दार्शनिक - कवि कहा जा सकता है.

दार्शनिक कवि के स्वरूप के विषय में विचार करने से पूर्व दर्शन और कवि के परस्पर संबंध पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है. कवि के स्वरूप के विषय में जो ऊपर विचार किया गया है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि को काव्य-प्रतिभा-सम्पन्न होना अनिवार्य है, दार्शनिक होना अनिवार्य नहीं, आशय यह कि कवि अदार्शनिक भी होते हैं. अर्थात् कुछ कवियों की बौध्दिक चेतना विशिष्ट प्रकार की होती है, परिणामस्वरूप उनके काव्य में भावुकता के साथ-साथ बौध्दिकता का समानुपाती-समन्वय भी मिलता है. बौध्दिकता और भावुकता का समानुपाती सुमेल यदि नहीं होता तो, या तो भावुकता के अतिरेक के कारण अदार्शनिक काव्य निष्पन्न होगा, और यदि बौध्दिकता का अतिरेक होगा तो वह अकाव्य प्रमाणित होगा. आशय यह कि जिस कवि में बौध्दिक और भावुक चेतना तुल्यबल, अर्थात परस्पर उपकारक होती है, वहीं कवि दर्शन-संवलित काव्य का कारक सिध्द होता है. अर्थात् दार्शनिक कवि वह है जिसके काव्य का आशय नहीं, अपितु आशय का विषय दर्शन हो. इस प्रकार दार्शनिक कवि, कलात्मक प्रक्रिया और दार्शनिक दृष्टिकोण इन दोनों की क्रीड़िका या इनसे संपृक्त समन्वय का परिचय देता है. अत: उसके व्यक्तित्व में दार्शनिक और कवि का समन्वित रूप मिलता है. उसके काव्य में दर्शन उभरकर नहीं आता, बल्कि प्रच्छन्न रूप से समस्त काव्य में व्याप्त रहता है, और वस्तुत: लय, छन्द, भाव, आदि आदि कलात्मक तत्व ही प्रस्फुटित होते हैं.[1] यही दार्शनिक कवि का वैशिष्टय् है.

1- Mallarme: selected Prose, Poems, essays, & letters - Trans: by. Bradford Cook - 1956 - P. 104-105

अन्य - पुस्त: Valery Paul - The Art of Poetry - P. 179

भारतवर्ष में अत्यंत प्राचीन काल से विविध दार्शनिक विचार-धाराएँ प्राप्त होती हैं, जिन्होंने भारतीय कवियों की चेतना को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया है. परंतु यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सामान्यत: प्राचीन भारतीय साहित्य को उन्हीं दर्शनों ने प्रभावित किया है जिन्हें आगे धार्मिक -दर्शन के नाम से अभिहित किया गया है. प्राय: धर्मेतर दर्शनों का प्राचिन भारतीय साहित्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता, यत्र तत्र कुछ काव्यों में इनका अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य मिल जाता है. तात्पर्य यह कि आधुनिक काल स से पूर्व भारतीय काव्य को उन्हीं दर्शनों ने प्रभावित किया है, जिनका संबंध किसी धार्मिक मतवाद के साथ अवश्य था. वेदान्त, बौध्द, जैन आदि कुछ ऐसे दर्शन हैं जिन्हों ने प्राचीन भारतीय काव्य को प्रभावित किया है तथा जिनका संबंध भी किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय के साथ रहा है. आधुनिक काल में भारतीय काव्य को कुछ समाजिक - राजनैतिक दर्शनों ने भी प्रभावित किया है, जिनका संबध धर्म के साथ नहीं है.

अतएव दर्शन और धर्म के संबंध की दृष्टि से, विविध दर्शनों को मूलत: दो कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है. :-

१ - धार्मिक दर्शन :- अर्थात् वे दर्शन जो किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से संबंधित हैं.

२ - धर्मेतर दर्शन :- वे दर्शन जो किसी धार्मिक मतवाद अथवा सम्प्रदाय से संबंधित नहीं है.

उक्त विभाजन को ध्यान में रखते हुए दर्शन और कवि के संबंध की दृष्टि से दार्शनिक कवियों के दो वर्ग किये जा सकते हैं_
१ - धार्मिक दर्शन से संबंधित कवि, २- धर्मेतर दर्शन से संबंधित कवि. इनमें प्रथम वर्ग के कवियों को निम्नलिखित प्रमुख दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है._

१- प्रपत्तिवादी दार्शनिक कवि :- इन कवियों का व्यक्तित्व साकार ईष्टदेव के प्रति समर्पित रहता है. परम् तत्व के रूप में, अपने ईष्टदेव को ही जीवन और जगत के समस्त कार्य व्यापारों का कर्ता एवं नियंता मानकर उसकी शरण में जाना, ये कवि सबसे बडा श्रेय मानते है. हिंदी साहित्य में सामान्यत: भक्ति कालीन कवि तथा प्रमुख रूप से सूरदास एवं तुलसीदास इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं.

२- रहस्यवादी दार्शनिक कवि :- रहस्यवाद के अंतर्गत मुख्य रूप से दो प्रकार के तत्व देखें जा सकते हैं- ज्ञानात्मक तथा भावात्मक. प्रथम, बौध्दिक कोटि के रहस्यवाद में परिणत होता है, तथा दूसरा इष्ट के विचार अथवा इष्ट के प्रति व्यक्तिगत भावात्मक - अनुभूति से परिचालित होता है.[1] अत: रहस्यवादी दार्शनिक कवियों का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये, उक्त भेद के आधार पर उन्हें दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है. १- ज्ञानोन्मुख रहस्यवादी दार्शनिक कवि, २- भावोन्मुख रहस्यवादी दार्शनिक कवि.

1- Mainkar T. G.- Mysticism in Rgveda - 1961- P.118-119

प्रपत्तिवादी दार्शनिक कवि, तथा भावोन्मुख रहस्यवादी दार्शनिक कवियों की तुलना में, ज्ञानोन्मुख-रहस्यवादी दार्शनिक कवि, भावना या भावात्मक - अनुभूति से नितांत रहित नहीं होते, उनमें भावुकता गौण रूप में निहित रहती है.[९] वस्तुत: प्रपत्तिवादी तथा भावोन्मुख-रहस्यवादी दार्शनिक कवियों में परम् सत्ता के प्रति द्रुतियुक्त धारावाहिता रहती है, जब कि ज्ञानी द्रुत नहीं हो सकता, जैसे भक्त द्रुतिहीन नहीं हो सकता. आशय यह कि ज्ञानोन्मुख -रहस्यवादी दार्शनिक कवि का दृष्टिकोण, उस परम् सत्ता के प्रति बौद्धिक- सावधानता से युक्त रहता है. उक्त श्रेणियों के अंतर्गत, हिंदी साहित्य में - कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, मीरा आदि कवियों को रखा जा सकता है.

उपरोक्त वर्गों से भिन्न, धर्मेतर दर्शन से संबंधित कवियों की आस्था, मात्र भौतिक जीवन एवं जगत के प्रति होती है. भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य के अंतर्गत पिछले दो-तीन सौ वर्षों में दृष्टिगत राष्ट्रीयतावादी, समाजवादी या प्रगतिवादी, मनोविज्ञानवादी, आदि कवियों को इस वर्ग के कवि माना जा सकता है.

निराला - काव्य में धार्मिक तथा धर्मेतर दोनों दर्शनों का प्रभाव दृष्टिगत होता है, अत: इसके अध्ययन की भूमिका के रूप में, दार्शनिक कवियों की परम्परा का विहंगावलोकन करना आवश्यक प्रतीत

9- Mainkar T. G. - Mysticism in Rgveda - P. 39

प्रतीत होता है. साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि हिंदी साहित्य की प्राचीन दार्शनिक काव्य परम्परा से आधुनिक दार्शनिक काव्य परम्परा किस रूप में भिन्न दिखायी देती है. अतएव प्रथम, हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की धार्मिक-दार्शनिक काव्य परम्परा का संक्षेप में अध्ययन कर, आधुनिक दार्शनिक काव्य परम्परा में निरालाजी के महत्व तथा स्थान का निरूपण किया जा सकता है.

४ - हिंदी में दार्शनिक कवियों की परम्परा :-

४ - १ हिन्दी साहित्य का आदिकाल : यद्यपि यह काल अनेक विवादों से ग्रस्त है, परंतु इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस काल में चारणों की वीरगाथा-काव्य परम्परा जैसी धर्म-निरपेक्ष काव्य परम्परा के साथ - साथ ऐसी काव्य परम्पराएं भी मिलती है, जिनका संबंध किसी न किसी धार्मिक दर्शन के साथ अवश्य रहा. सहजयानी बौध्दों की काव्य परम्परा के साथ इस काल में जैन तथा नाथ काव्य परम्पराएं भी मिलती हैं. सैध्दान्तिक दृष्टि से धार्मिक सम्प्रदायों के साहित्य को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है. -

१) ऐसा साहित्य जिसमें अपने विशेष धार्मिक तथा दार्शनिक मतवाद का सैध्दान्तिक विवेचन हो.

२) ऐसा साहित्य जिसमें कथा-आख्यानों के माध्यम से अपने विशेष धार्मिक-दार्शनिक मतवाद का सामान्य जनता में प्रचार किया गया हो.

---

३) ऐसा साहित्य जिसमें धार्मिक-दार्शनिक मतवादों को अपने जीवन में,साधना के रूप में चरितार्थ कर,धार्मिक-दार्शनिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में लिखा गया हो ।

उक्त तीनों प्रकार के साहित्य को हम क्रमशः - सैद्धान्तिक, प्रचारात्मक, तथा अनुभूतिपरक साहित्य के नाम से अभिहित कर सकते हैं ।

यह तो स्पष्ट ही है कि विशुद्ध काव्यात्मक दृष्टि से प्रथम दो प्रकार का साहित्य काव्य नहीं कहा जा सकता । आदिकाल के साहित्य के अध्ययन के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सिद्धों और नाथों के गेय पदों में वह काव्य मिलता है जो इन सिद्ध-नाथ कवियों ने अपने धार्मिक-दार्शनिक मतवाद को जीवन में उतारकर,एक विशेष प्रकार की साधना करते हुए,उसकी यथार्थ अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में लिखा । अतः वस्तुतः सिद्धों और नाथों के चर्यापदों को दार्शनिक काव्य कहा जा सकता है ।

जैन कवियों में प्रचार-दृष्टि तथा चमत्कार-प्रदर्शन का प्राधान्य अधिक मिलता है,अतएव इन्होंने मुख्यतः प्रबंध ही लिखे हैं,तथा उनमें धार्मिक साधना की अनुभूति की वह अभिव्यक्ति नहीं मिलती जो सिद्धों और नाथों के काव्य में दिखायी देती है । कहने का आशय यह नहीं कि सिद्धों और नाथों ने सैद्धान्तिक तथा प्रचारात्मक काव्य लिखा ही नहीं,या उनके साहित्य में चमत्कार-प्रदर्शन की भावना दिखायी नहीं देती,परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आदिकालीन हिन्दी(जैन) जैसे काव्य की तुलना में,सिद्धों और नाथों की रचनाओं में दार्शनिक तत्व अधिक मिलता है ।जैनों के प्रबंधों में आलंकारिक काव्य के सुंदर उदाहरण यत्र-तत्र मिलते हैं,परंतु उनमें जैन कवियों की धार्मिक

प्रचार की भावना सर्वत्र प्रमुख है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी के आदिकाल में, सिद्धों और नाथों की रचनाओं में दार्शनिक काव्य के दर्शन होते हैं । काव्य का यही रूप आगे चलकर भक्तिकाल के अन्तर्गत संतकाव्य तथा राम-कृष्ण के भक्तिकाव्य में विकसित होता है ।

३-३ हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल : हिन्दी के भक्तिकाल को हिन्दी काव्य का स्वर्णकाल कहना इस दृष्टि से भी उचित है कि इस काल में, हिन्दी काव्य में जहां एक ओर धर्म और दर्शन का सुंदर समन्वय दिखायी देता है, वहीं दूसरी ओर दर्शन और काव्य का भी बड़ा ही उत्कृष्ट संयोग दृष्टिगत होता है । सूरदास तथा तुलसीदास का काव्य इस दृष्टि से वस्तुत: महान् तथा दार्शनिक काव्य कहा जा सकता है ।

संतों के काव्य में जहां धर्म के कर्मकांडीय पक्ष की उपेक्षा दृष्टि-गत होती है वहीं उसमें काव्य तत्व का भी वह उदात्त स्वरूप नहीं दिखायी देता जो सूर-तुलसी के काव्य में वर्तमान है ।

सूफी कवियों ने जो प्रबंध लिखे हैं उनके मूल में सूफ़ी दर्शन अवश्य है तथा उस पर भारतीय संतों का कुछ प्रभाव भी है, परंतु उनमें दर्शन का स्वर प्रबंध-संघटना के नीचे कुछ दब सा गया है । सूफ़ी प्रबंधों में दर्शन, रूपकार्थ के रूप में गौण रहा है, और उनमें प्रबंध की कथा प्रधान हो गई है । जायसी जैसे कवि के केवल 'पद्मावत्' प्रबंध में यत्र-तत्र दर्शन और काव्य का सुंदर समन्वय दिखायी देता है । परंतु जायसी की 'अखरावट' जैसी रचनाओं में सूफ़ी दर्शन

की सैद्धान्तिक विवेचना ही प्रधान है । अन्य सूफ़ी कवियों की रचनाओं में प्रेमाख्यान ही प्रमुख है,उनमें दार्शनिक तत्वों की उदात्त काव्य के रूप में परिणति नहीं मिलती । संतों के उन्मुक्त गानों में रूढ़िवादिता तथा साम्प्रदायिक दार्शनिकता के अभाव के साथ साधना पर आधारित दार्शनिक अनुभूतियों की जो अभिव्यक्ति मिलती है,वह सूफ़ियों के प्रबंधों में दिखायी नहीं देती ।

सगुणोपासक हिन्दी भक्त कवियों की रचनाओं में संतों के समान प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का विरोध नहीं मिलता । परंतु उनकी रचनाओं में धार्मिक अनुभूतियों का वह सहज रूप अवश्य मिलता है जो आदिकाल के सिद्धों तथा नाथों में एवं भक्तिकाल के संतों में दृष्टिगत होता है ।सूर तथा तुलसी की रचनाएं इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । उनकी रचनाओं में जिस प्रकार लौकिक एवं पारलौकिक भावजगत का सुमेल दृष्टिगत होता है,उसी के अनुरूप उनकी रचनाओं में दर्शन और काव्य का उदात्त समन्वय भी देखा जा सकता है । आशय यह कि सूर-तुलसी का काव्य जितना श्रेष्ठ है उतना ही महान् है । काव्यात्मक चमत्कार के साथ-साथ भावों और विचारों की जो ऊंचाई उनमें मिलती है,उसीके आधार पर उन्हें हिन्दी के श्रेष्ठतम धार्मिक-दार्शनिक कवि कहा जा सकता है ।

३-४ हिन्दी साहित्य का रीतिकाल : भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल की परिसीमा में,राजाश्रित काव्य परम्परा के प्रमुख हो जाने के कारण,कबीर-सूर-तुलसी की परम्परा क्षीण अ-

अवश्य ही गई परंतु पूर्णत: समाप्त नहीं हुई । सूरदास को तो यह गौरव प्राप्त है कि उसने धार्मिकता से मुक्त रीतिकाव्य को अनेक रूपों में प्रभावित किया, और अपनी स्वकीय कृष्ण-भक्त काव्य परम्परा को भी आधुनिक काल तक विस्तृत किया । कबीर तथा तुलसी का इस प्रकार का प्रभाव यद्यपि नहीं रीतिकाल पर नहीं देखा जा सकता, परंतु इन कवियों की परम्परा रीतिकाल की परिसीमा में भी अक्षुण्ण अवश्य बनी रही, तथा उसका भी रूप परिवर्तन सूर की कृष्ण-काव्य परम्परा के समान आधुनिक काल में हुआ ।

आशय यह कि कबीर, सूर तथा तुलसी के काव्यों में जिस प्रकार की दार्शनिकता मिलती है, वह रीतिकाल के अन्य संत, कृष्णभक्त, तथा रामभक्त कवियों में नहीं मिलती है । यह बात दूसरी है कि इन कवियों के काव्य का दार्शनिक पक्ष उतना प्रबल नहीं है, जितना उक्त महाकवियों का है । परंतु इन्हें उस अर्थ में दार्शनिक कवि अवश्य कहा जा सकता है, जिस अर्थ में जिस अर्थ में आदिकाल के सिद्धों और नाथों को कहा गया है ।

३-४ <u>हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल</u> : आधुनिक काल के पूर्व रीतिकाल की परिसीमा में जो हिन्दी-काव्य लिखा गया उसे प्रधानत: रीतिकाव्य अथवा श्रृंगारकाव्य कहा जाता है। परंतु उस समय हिन्दी में धार्मिक काव्य परम्परा का नितान्त ह्रास नहीं हुआ था । जिस प्रकार हिन्दी के रीतिकाव्य ने हिन्दी के आधुनिक काव्य को प्रभावित किया है उसी प्रकार रीतिकाल की परिसीमा में आनेवाले भक्तिकाव्य ने भी आधुनिक हिन्दी काव्य को प्रभावित किया है ।

यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के पूर्व हिन्दी काव्य के अन्तर्गत या तो मनुष्य-आस्तिक व्यक्ति के रूप में,अथवा मनुष्य- एक धार्मिक प्राणी के रूप में चित्रित किया गया है । इसके फलस्वरूप ही आधुनिक काल के पूर्व, उक्त तीन काव्य-प्रकारों में से केवल दो ही प्रकार प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं । आधुनिक काल में मनुष्य के उक्त दो रूपों के अतिरिक्त उसके कुछ अन्य रूपों को भी काव्य के विषय के रूप में स्वीकार किया गया । अर्थात् आधुनिक हिन्दी काव्य में मनुष्य- एक व्यक्ति तथा धार्मिक व्यक्ति के रूप में तो चित्रित किया ही गया है,वह एक सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप में भी काव्य का विषय बनाया गया है । पाश्चात्य देशों के साथ सम्पर्क स्थापित होने के कारण हमारी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति में जो नवीन उन्मेष हुए,उनके द्वारा हमारे समाज की चेतना किसी न किसी रूप में प्रभावित अवश्य होती रही । अ अत: परिणामस्वरूप हिन्दी के आधुनिक काव्य में कुछ अभूतपूर्व विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में यदि एक ओर कुछ नितान्त नवीन विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं,तो दूसरी ओर प्राचीन हिन्दी काव्य की विशेषताएं भी परिवर्तित रूप में दिखायी देती हैं । भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य का अनुशीलन किया जाय,तो हिन्दी काव्य का प्राचीन से नवीन की ओर संक्रमण अधिक स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है । उदाहरणार्थ,भारतेन्दु काल के ब्रजभाषा काव्य में यद्यपि कुछ नवीन विषयों का समावेश हुआ,परंतु प्रधानत: इस काल के ब्रजभाषा काव्य का विषय और विन्यास रीतिकालीन ही था । रीतिकाव्य में,जिस अंश में कृष्ण-भक्ति दृष्टिगत होती है,उसी अंश में वह भारतेन्दुकालीन ब्रजभाषा में भी दिखायी देती है ।

रीतिकाल की परिसीमा में प्रवहमान भक्ति काव्यधारा, यद्यपि अत्यन्त गौण हो गई थी, तथापि पूर्णत: समाप्त नहीं हुई थी । इस परम्परा का प्रभाव भी भारतेन्दुकाल की हिन्दी कविता पर, और विशेषत: खड़ी-बोली की कविता पर देखा जा सकता है । हिन्दी-गद्य में तो ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज आदि के प्रभाव द्वारा सुधारवादी संत-परम्परा का रूप मिलता ही है, तत्कालीन खड़ी-बोली की कविता पर भी उनका प्रभाव देखा जा सकता है । जिस अर्थ में श्री रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, तथा महात्मा गांधी आदि को- संत कबीर, दादू, संत ज्ञानदेव तथा नामदेव का आधुनिक रूप माना जा सकता है, उसी अर्थ में, भारतेन्दुकाल में अंकुरित और द्विवेदीकाल में विकसित हिन्दी काव्य के सुधारवादी, समाजवादी, ज्ञानवादी स्वर को प्राचीन संतकाव्य का आधुनिक रूप कहा जा सकता है ।

आशय यह कि आधुनिक हिन्दी काव्य, रीतिकालीन हिन्दी काव्य परम्परा का सहज विकसित रूप ही है । हिन्दी की रीतिकालीन संतकाव्य परम्परा में जिस प्रकार अनेक नवीन तत्वों का उन्मेष होकर, भारतेन्दुकाल में उसका परिचय मिला, तथा द्विवेदीकालीन सुधारवादी काव्यधारा के रूप में आगे विकास हुआ, उसी प्रकार रीतिकाव्य का या रीतिकालीन श्रृंगारकाव्य का छायावाद के श्रृंगारिक पक्ष में क्रमश: संक्रमण हुआ । साथ ही उसमें कुछ ऐसे नवीन तत्व भी आए जिसके कारण उसे रीतिकालीन श्रृंगारकाव्य से भिन्न - छायावादी श्रृंगारकाव्य कहा जाना चाहिये ।

पहले कहा जा चुका है कि रीतिकाव्य में मनुष्य, एक व्यक्ति के रूप में स्वीकृत था, उसी प्रकार छायावादी काव्य में भी मनुष्य का व्यक्तिवादी

स्वरूप ही ग्राह्य रहा है। यह बात दूसरी है कि छायावादी श्रृंगारकाव्य का नायक व्यक्ति होने के अतिरिक्त एक विचारक,आदर्शवादी,अस्थूल-काल्पनिक विशेष रूप से है। छायावाद के नायक में वह भोगवाद,मांसलता तथा ऐहिकता नहीं दिखायी देती,जो रीतिकाव्य के नायक में दृष्टिगत होती है।

छायावाद की उपरोक्त नवीन विशेषताओं के मूल में,आधुनिक-काल में प्रतिफलित सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक,सांस्कृतिक तथा धार्मिक उथलपुथल को माना जा सकता है। भारतेन्दुकाल में इस नवीन युग की क्रांति का सूत्रपात हुआ,और द्विवेदी युग के आते-आते यह क्रान्ति अधिक व्यापक हो गई। इसके परिणामस्वरूप रीतिकालीन हिन्दी काव्य परम्परा में जो क्रमश: परिवर्तन घटित हुआ उसकाल सुस्पष्ट रूप छायावादी काव्य में ही सर्व प्रथम दिखायी देता है। साथ ही छायावादी काव्य में,रीतिकाल की श्रृंगार काव्य परम्परा एवं धार्मिक काव्य परम्परा की पृथक् छाया भी दिखायी देती है। इसी के फलस्वरूप छायावादी काव्यधारा में 'श्रृंगारिक-दर्शन' और 'दार्शनिक-श्रृंगार' का सुंदर समन्वय मिलता है।

प्रसाद,निराला,पंत तथा महादेवी- इन चारों प्रमुख छायावादी कवियों में,किसी न किसी अनुपात में दर्शन और काव्य का सम्मिश्रण अवश्य मिलता है। परंतु कतिपय अन्य सामान्य छायावादी कवियों के काव्य में भौतिकवादी दर्शन का प्रधान्य मिलता है,तथा कुछ अन्य कवियों में कामपरक व्यक्तिवाद का अतिरेक दिखायी देता है। छायावादोत्तर काल में प्रगतिवादी काव्य तथा प्रयोगवादी काव्य- छायावाद की इन्हीं दो धाराओं के विकसित रूप हैं।

रीतिकाव्य में यद्यपि दर्शन पक्ष का नितान्त अभाव कहा जा सकता

है,परंतु उसमें धार्मिक तत्व का नितान्त अभाव नहीं कहा जा सकता । श्रृंगारिकता,रीतिकाल का युगधर्म थी । वह जिस प्रकार रीतिकाव्य या श्रृंगार-काव्य में प्रधान रूप से दृष्टिगत होती है,उसी रूप में वह तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों में तथा समाज के एक विशेष प्रभावशाली वर्ग में भी व्याप्त थी । आधुनिक काल में सांस्कृतिक पुनरुत्थान ने,भारतीय जीवन की श्रृंगारिकता का रूप बदल दिया है । आज के गृहस्थ समाज में प्रेम का जो रूप दृष्टव्य है,लगभग उससे मिलता-जुलता रूप काव्य में दिखायी देता है । इसी प्रकार आधुनिक समाज में धर्म का कर्मकाण्डी रूप,नवीन विज्ञानप्रधान शिक्षा के कारण क्रमश: घटता जा रहा है,तथा धर्म के दार्शनिक पक्ष के साथ अन्य सामाजिक दर्शनों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । इसी का परिणाम है कि छायावादी काव्य में धर्म के कर्मकाण्डी रूप का नितान्त अभाव और उसके दार्शनिक पक्ष का प्राधान्य तो दिखाई देता ही है,उसके साथ-साथ समाजवाद,राष्ट्रीयतावाद आदि सामाजिक-दार्शनिक (Socio-Philosophical) विचारधाराओं का प्रभाव भी मिलता है ।

आशय यह कि दार्शनिकता,छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है,जो यद्यपि इस रूप में प्राचीन काल में नहीं मिलती,परंतु अद्वैतवाद, प्रत्यभिज्ञावाद आदि औपनिषदिक दर्शनों से विकसित प्राचीन भारतीय दर्शनों का प्रत्यक्ष प्रभाव,छायावाद की दार्शनिकता पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । आशय यह कि जहां छायावाद ने प्राचीन भारतीय दर्शनों के परम्परा-प्राप्त रूप को स्वीकृत किया है,वहीं उसकी नवीन व्याख्या भी की है,तथा कतिपय पाश्चात्य दार्शनिक मान्यताओं को भी स्वीकार किया है । तात्पर्य यह कि आधुनिक काल से पूर्व के हिन्दी काव्य में जो केवल धार्मिक सम्प्रदायों

से संबंधित दर्शनों का प्रभाव दिखाई देता है, वह छायावादी काव्य में दृष्टिगत नहीं होता। छायावादी काव्य में धार्मिक तथा अन्य सामाजिक दर्शनों का समावेश मिलता है। इस काव्य में परम्परागत धार्मिकता का रूप नगण्य मात्र है। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी के दार्शनिक कवियों की परम्परा में छायावादी काव्य ने एक अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किया। अतएव इस दृष्टि से हिन्दी की समस्त दार्शनिक काव्य परम्परा को दो कालखण्डों में विभक्त किया जा सकता है -

१) छायावाद-पूर्व दार्शनिक काव्यधारा, जिसमें धर्म-संवलित दर्शन प्रधान है।

२) छायावाद एवं छायावादोत्तर दार्शनिक काव्यधारा, जिसमें धर्म-मुक्त दार्शनिकता प्रधान है।

इस प्रकार धर्म, दर्शन एवं साहित्य का पारस्परिक संबंध, तथा दर्शन एवं साहित्य की घनिष्ठता देख लेने के पश्चात्, हिन्दी काव्य के अन्तर्गत दार्शनिक कवियों की परम्परा का अनुशीलन किया जा चुका है। उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निरालाजी का इस परम्परा में स्थान निश्चित किया जा सकेगा।

४- छायावाद युग का दार्शनिक पक्ष एवं हिन्दी की दार्शनिक कवि परम्परा में निरालाजी का स्थान :

४-१ छायावाद युग की दार्शनिक पीठिका : १६ वीं शताब्दी से भारत में जो सांस्कृतिक एवं राष्ट्रिय आन्दोलन प्रारंभ हुआ उसका प्रभाव छायावाद युग पर अत्यन्त व्यापक रूप से पडा, इस तथ्य का संकेत इससे पूर्व किया जा चुका है. वस्तुतः इस काल में अनेक प्रतिभाशाली महान विचारकों की एक अत्यन्त प्रौढ एवं दृढ परम्परा देखी जा सकती है. राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविंद आदि महान विभूतियों ने अपने व्यक्तित्व एवं विचारोंसे समग्र देश को जाग्रत किया. इन्होंने भारतीय जनता को मुख्य रूप से वैदिक धर्म तथा उपनिषदों के मूल मंत्र दिये[१]. अर्थात् केवल वैचारिक या दार्शनिक क्षेत्र तक ही उक्त धर्मग्रंथों के मूल्यों को सीमित न रखकर, व्यावहारिक जीवन में भी उनका स्वयं विनियोग कर दिखाया, और जनता में नवीन प्रेरणा तथा शक्ति का संचार किया. विशेष रूप से स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त की व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए वेदान्त के जिन सूत्रों का प्रसार किया उनमें प्रमुख थे 'सो हमस्मि'[२] 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'[३] 'एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'[४] 'तत्वमसि'[५],'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'[६] इत्यादि.

---

१ - तुल - सिंह हरनारायण -छायावाद काव्य तथा दर्शन-१९६४पृ.१७७.

२ - Selections from Swami Vivekananda - 1963 (Advaita Ashrama) P.463

३ - Ibid - P. 463

४ - Swami Vivekananda - Lectures from Colombo To Almora - 1956 (Advaita Ashrama) P.14,15,113,332,364,381

५ - Selections from Swami Vivekananda - 1963 - P. 463

६ - Swami Vivekananda - Lectures from Colombo to Almora - P.292

आशय यह कि इस वैचारिक क्रान्ति ने छायावादी कवियों का नवीन दृष्टि प्रदान की छायावाद की प्रस्थापना ही वस्तुतः[1] उक्त सांस्कृतिक-वैचारिक-राष्ट्रीय पीठिका पर हुई. छायावाद युग के कवियों ने वैचारिक तथा चिन्तन की भूमिका पर स्थिर होकर, विशिष्ट जीवन-दृष्टि को स्वीकृत एवं आत्मसात करते हुए काव्य-सृजन कि किया. अतः छायावाद युग में जिन दार्शनिक धाराओं को स्वीकार किया गया उन्हें सक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है.

छायावाद के सभी कवि सुशिक्षित एवं सुसंस्कारी थे. प्रायः सभी ने और विशेषा रूप से पूर्वोल्लिखित प्रमुख चार कवियों ने वेद[1], उपनिषाद, तथा अन्य भारती दर्शनों का गहन अध्ययन किया था. अतएव विशेषा रूपसे अद्वैत-दर्शन का उनकी बौध्दिक तथा मानसिक एवं भावात्मक चेतना पर गहरा प्रभाव पडा.[2] वैसे भी ये कवि वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के उपासक थे, अतः उक्त दर्शनों का, मात्र वैचारिक ही नहीं अपितु जीवन-साधना के रूप में वे स्वीकार कर चुके थे. उक्त दर्शनों एवं सम्प्रदायों के संपर्क के परिणाम-स्वरूप ही छायावाद युग में भक्तिकाल की आस्तिकता का विकसित रूप देखा जा सकता है.

---

१ - तुलः बाजपेयी नंददुलारे - आधुनिक साहित्य पृ. ३७३.

२ - तुल -सिंह हरनारायण - छायावाद काव्य तथा दर्शन पृ. १७८.

३ - तुल - बाजपेयी नंददुलारे- हिंदी साहित्य २० वीं शताब्दी, १९४९- विज्ञाप्ति पृष्ट १२.

( )

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के काव्य तथा रहस्यवाद से भी छायावादी कवियों ने प्रेरणा ग्रहण की. उक्त रहस्यवादी भावना का एक स्रोत पश्चिम का रोमैंटिक काव्य भी रहा. वहाँ के रोमैंटिक युग के कवियों क की रचनाओं से छायावादी कवि भली भाँति परिचित थे. इस रहस्यवादी दर्शन का छायावादी काव्य में विशेष योग देखकर प्राय: आलोचकों द्वारा छायावाद और रहस्यवाद को पर्याय माना जाता रहा.

छायावाद युगीन कवियों पर भारत की पराधीनता, विपन्नावस्था, अज्ञान, वर्ण-भेद आदि से उत्पन्न दुखों एवं क्लेशों का भी गहरा प्रभाव पडा.[१] निरालाजी जैसे कतिपय छायावादी कवियों को अत्यन्त संघर्ष, दुख एवं अभाव से युक्त जीवन व्यतीत करना पडा जिसके मूल में तत्कालीन परिस्थितियाँ मुख्य रूप से कारण भूत थीं.

आशय यह की उक्त निराशाजनक परिस्थितियों के साथ बौध्द- दर्शन एवं बौध्द- साहित्य के अध्ययन एवं अनुशीलन ने छायावादी कवियों को बौध्द - दर्शन के प्रति आस्थावान बना दिया था.[२] परिस्थिति के फलस्वरूप ही शायद बौध्द दर्शन तथा उसके दुखवाद का छायावादी काव्य में करूणाजन्य स्वर दिखायी देता है.[३] महर्षि अरविन्द के विचारों ने भी छायावादी कवियों को, और इनमें विशेष रूप से श्री सु. पंत को बहुत प्रभावित किया.[४]

---

१ - तुल: सिंह हरनारायण-छायावाद:काव्य तथा दर्शन पृ.९१-९२.
२ - तुल: अ- पंत सुमित्रानंदन-उत्तरा(प्रथम संस्करण)प्रस्तावना पृ.१२.
आ-वर्मा महादेवी-रश्मि-१९३८-अपनी बात,पृ.६-७.
ई - सुमन रामनाथ - कवि प्रसाद की काव्य साधना,प्र.सं.पृ.३२०.
३ - पन्त सुमित्रानंदन-उत्तरा-प्रथम संस्करण प्रस्तावना,पृ. १९-२०.
४ - अ. सिंह हरनारायण - छायावाद : काव्य तथा दर्शन - पृ. ४४८-४५०
आ. तुल: वर्मा रवीन्द्रसहाय - हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - प्र. सं. - परिशिष्ट (ङ), पृ. २८२

( )

उपरोक्त भारतीय दर्शनों के अतिरिक्त छायावाद युग पर पश्चिम के कतिपय दर्शनों ने भी प्रभाव डाला. यथा शापेनहावर का निराशावाद, हेगेल का Unity in difference बर्गसाँ का creative evolution इत्यादि. परंतु सबसे अधिक प्रभाव मार्क्स के समाजवादी दर्शन का पडा. इसी दर्शन के आधार पर छायावाद के बाद प्रगतिवादी काव्य का विकास हिन्दी में हुआ, परंतु इसका सूत्रपात छायावाद युग में हो चुका था.

आशय यह कि इस युग में भारतीय दर्शन के अत्यन्त उदात्त एवं प्रौढ मूल्यों का, काव्य में समन्वयात्मक विनियोग किया गया. वस्तुत: इस युग के कवियों ने अपनी जीवन-दृष्टि को ही काव्य-दृष्टि में रूपान्तर किया. अतएव कहा जा सकता है कि भक्तिकाल के बाद छायावाद युग में ही हिन्दी साहित्य द्वारा प्रौढ एवं उदत्त रूप में भारत के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक-दार्शनिक मूल्योंकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति हो सकी. इसके अतिरिक्त पहले बताया जा चुका है कि हिन्दी के रीतिकाल या श्रृंगारकाल का ही छायावाद में प्रच्छन्न विकास हुआ है. अतएव रीतिकालीन काव्य की शास्त्रीयता के रूप में काव्यात्मक प्रौढता, तथा भक्तिकाल की दार्शनिकता के रूप में वैचारिक प्रौढता- इन दोनों का सुंदर समन्वय छायावाद युग में दृष्टिगत होता है.

छायावाद युग की दार्शनिक पीठिका का संक्षिप्त विवेचन करने

---

१ - अ - सिंह हरनारायण - छायावाद : काव्य तथा दर्शन - पृ. ४४८-४५०
आ - तुल : वर्मा रवीन्द्रसहाय - हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - पृ-सं- परिशिष्ट (ई.), पृ- २८२

के पश्चात् संक्षेप में यह देखना आवश्यक प्रतीत होता है कि उस युग के प्रमुख कवि- प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी ने अपने काव्य में दर्शन की किन धाराओं को अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही हिन्दी के प्रमुख दार्शनिक कवियों की परम्परा में निरालाजी का महत्व एवं स्थान निश्चित किया जायगा।

४-२ <u>हिन्दी के प्रमुख दर्शनिक कवियों में निरालाजी का स्थान</u> : प्रसादजी के काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने लगभग १९०९ से काव्य-सृजन आरंभ किया।[1] उनकी प्रारंभिक रचनाएं ब्रजभाषा में लिखी गई हैं।[2] इनके ब्रजभाषा काव्यसंग्रह 'चित्राधार' से लेकर खड़ी-बोली की रचना 'आंसू' तक की रचनाओं में प्राय: भावुकता की अतिशयता देखी जा सकती है, तथा वैचारिक प्रौढ़ता का अभाव दिखायी देता है। परंतु 'आंसू' से 'कामायनी' तक अर्थात् १९३१ से १९३५ तक उनके काव्य में क्रमश: चिन्तन की ठोस भूमि दिखायी देने लगती है। प्रसाद जी की वैचारिक एवं काव्यात्मक प्रौढ़ता की उत्कृष्ट परिणति 'कामायनी' में देखी जा सकती है। इस काव्य में शैवाद्वैत या प्रत्यभिज्ञा दर्शन का सुंदर विनियोग मिलता है। प्रसादजी द्वारा किये गये अन्य दर्शनों के अध्ययन का प्रभाव उनके काव्येतर साहित्य में दृष्टव्य है। विशेषत: उनके नाटकों में बौद्ध-दर्शन का प्रभाव मिलता है।

निरालाजी की आरंभिक रचना 'जुही की कली' १९१६ में लिखी गई थी। इस प्रथम रचना द्वारा ही निरालाजी ने दर्शन और काव्य के सुंदर समन्वय का परिचय दिया है। वस्तुत: 'परिमल' के (सन् १९३०) प्रकाशन से

१- 'शरण' दीनानाथ - छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन - पृ-१८९
२- वही - पृ-१९०

उनके काव्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । इस रचना में `समन्वय` कालीन निरालाजी के द्वारा किये गये विविध दर्शनों के अध्ययन, तथा स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है । उनका काव्य मुख्य रूप से अद्वैतवाद पर प्रतिष्ठित दिखायी देता है । विशेषत: स्वामी विवेकानन्द द्वारा की गई अद्वैत-दर्शन की व्याख्या का स्पष्ट रूप देखा जा सकता है । साथ ही भक्ति-कर्म-योग की समन्वयात्मक चेतना के अतिरिक्त प्रपत्तिभाव तथा राष्ट्रीयता, निरालाजी की आरंभिक रचनाओं में दृष्टव्य हैं । `गीतिका` में, विशेष रूप से संगीत के साथ मेल बैठाने का प्रयास किया गया है, यद्यपि रहस्यवादी दार्शनिक आधारभूमि पर विविध भावों की अभिव्यंजना मुख्य रूप से मिलती है । `अनामिका` में दर्शन के विविध रूप, तथा राष्ट्रीय भावना देखी जा सकती है । इस काव्य-संग्रह के अन्तर्गत `राम की शक्ति पूजा` में शाक्त-दर्शन की झलक तथा `सरोज-स्मृति` में तथा कुछ अन्य रचनाओं में बुद्ध के दुखवाद का स्वर दृष्टव्य है । इसी संग्रह में समाजवादी दर्शन का भी बड़ा सुष्ठु रूप मिलता है। `तुलसीदास` में निरालाजी ने मनो-दार्शनिक (Psycho-Philosophical) आधार भूमि पर व्यक्ति के अन्तर्मुखी विकास को दिखाने का नवीन प्रयास किया है । इसके पश्चात् `कुकुरमुत्ता` से `नये पत्ते` तक की रचनाओं में व्यंग की प्रधानता के साथ समाजवादी दर्शन की झलक देखी जा सकती है । तत्पश्चात् `अणिमा` से `गीतगुंज` तक की रचनाओं में निरालाजी पुन: आध्यात्मिक-दार्शनिक धरातल पर उतर आते हैं । इन रचनाओं में विशेष रूप से उनके प्रपत्तिवादी भाव दृष्टिगत होते हैं ।

आशय यह कि निरालाजी ने आरंभ से अंत तक व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण दर्शन का परिचय दिया है ।

पंतजी की रचनाओं का आरंभ सन् १९१८ से माना गया है। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में भावुकता का प्राधान्य तथा प्रकृति-प्रेम मिलता है। परंतु 'पल्लव' से 'ज्योत्स्ना' तक की रचनाओं में चिन्तनात्मक मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं। 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक की रचनाओं में समाजवादी दर्शन की ओर कवि का फुकाव दिखायी देता है। इन रचनाओं में चिन्तन की ठोस भूमि अवश्य देखी जा सकती है। तत्पश्चात् 'स्वर्णकिरण' से 'कला और बूढ़ा चान्द' तक की रचनाओं में समाजवाद या प्रगतिवाद का आग्रह न होकर, अरविन्द-दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। वस्तुत: सामान्य रूप से पंतजी को प्रकृति का कवि माना गया है, परंतु सन् १९३८ से १९४५ तक, तथा प्राय: सन् १९४५ के पश्चात् क्रमश: प्रगतिवादी या समाजवादी एवं अरविन्द-दर्शन द्वारा उनकी, वैचारिक प्रौढ़ता के रूप में दार्शनिकता अवश्य देखी जा सकती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा की रचनाओं में विचार-वैविध्य का प्राय: अभाव ही मिलता है। इनके समस्त काव्य में प्राय: बुद्ध के दु:खवाद एवं भावात्मक रहस्यवाद के ही दर्शन होते हैं। अत: कहा जा सकता है कि इनकी विचारधारा प्राय: इन्हीं दो दर्शनों से परिचालित रही है।

उपरोक्त विवेचन की दृष्टि से महादेवीजी के काव्य में दर्शन की भूमि विशेष रूप से संकुचित तथा एकरूप दिखाई देती है। महादेवीजी की अपेक्षा पंतजी में विचारों की प्रौढ़ता तथा विविधता देखी जा सकती है, परंतु फिर भी दर्शन- उनके व्यक्तित्व के अंग के रूप में दृष्टिगत नहीं होता। उनके काव्य में प्राय: सौन्दर्य और प्रकृति-प्रेम का ही प्रधान्य मिलता है।

१- 'शरण' दीनानाथ - छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन - पृ. १९१

प्रसादजी के काव्य में वैचारिक प्रौढ़ता के उत्तम अंश मिलते हैं । उन्होंने भारतीय इतिहास, दर्शन तथा धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन किया था । अत: उनके काव्य की वैचारिक तथा दार्शनिक भूमि उक्त दोनों कवियों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ एवं व्यापक है । 'कामायनी' में उनके दार्शनिक पक्ष को विशेष रूप से देखा जा सकता है । इस रचना में यद्यपि प्रत्यभिज्ञा दर्शन का सुंदर विनियोग मिलता है, परंतु उक्त रचना में दार्शनिक पक्ष निष्कर्ष रूप में दिखाई पड़ता है । कामायनी में प्रसादजी की वर्णन-पद्धति ही यह रही है कि दार्शनिक पक्ष उपसंहार के रूप में दृष्टिगत होता है । काव्य के अन्तर्गत बीच-बीच में जो दार्शनिक शब्द आए हैं वे प्रासंगिक हैं, उनकी समस्त काव्य में व्याप्ति नहीं दिखाई देती । आशय यह कि प्रसादजी की रचनाओं में प्रौढ़, दार्शनिक विचारों का योग, काव्य के विशिष्ट विकास का संकेत अवश्य करता है, परंतु दर्शन, उनके काव्य का आधार आरंभ से नहीं रहा, अत: उनके समस्त काव्य को दर्शन से सम्मि समन्वित नहीं कहा जा सकता ।

निरालाजी के काव्य-विकास का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि उनके काव्य में न केवल दर्शन व्याप्त है, अपितु उनके काव्य की अंतिम परिणति ही दर्शन में होती है ।[१] यदि निरालाजी का सौंदर्य-वर्णन देखा जाय तो उनकी काव्य-रचनाओं की अंतिम मैं पंक्ति में अथवा अंतिम चरण में असीम सौंदर्य या सत्ता का सतत निर्देश मिलता है । सौंदर्य-वर्णन के अन्तर्गत अन्त में विराट-सौन्दर्य का निरूपण उनका प्रमुख वैशिष्ट्य है । उनकी प्राय: सभी रचनाओं में, लौकिक को अलौकिक में समन्वित करने की वृत्ति केन्द्र रूप में दिखाई देती है । उनके काव्य में अद्वैत-दर्शन मेरुदण्ड के रूप में दृष्टिगत होता है ।

१- देखिये परिशिष्ट संख्या-

भक्तिकाल के अन्तर्गत अद्वैत-दर्शन की भूमिका कबीर में भी दिखाई देती है। परंतु कबीर का 'मिशन' (Mission) निराकार ब्रह्म के साथ एकता स्थापित करना या उसे प्राप्त करना था। निरालाजी में उस ओर तड़प बहुत थी, परंतु वैसा मिशन नहीं था, क्योंकि वे मूलतः कवि थे। साथ ही वे मात्र निर्गुण-निराकार के प्रति ही आकर्षित नहीं हुए, उनकी रचनाओं में ईश्वर के सगुण रूप के प्रति आसक्ति दृष्टव्य है। यद्यपि कबीर सा ही फक्कड़पन निरालाजी में था, समाज पर कठोर व्यंग दोनों ने कसे हैं, परंतु कबीर का सुधारवादी दृष्टिकोण निवृत्तिमार्गी था जब कि निरालाजी का सुधारवाद स्वामी विवेकानन्द के प्रवृत्तिमार्गी या व्यावहारिक वैदान्त से प्रभावित था। इस दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि निरालाजी कबीर की परम्परा में आते हुए भी अपनी विशिष्टता बनाये रखते हैं।

भक्तिकाल के अन्य दो महाकवि सूरदास और तुलसीदास भी अद्वैतवादी थे। सूरदास, श्रीमद् वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत तथा तुलसीदास, श्रीमद् रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे। परंतु ये दोनों कवि मूलतः भक्त या साधक थे, कवि नहीं। सूरदास का मूल लक्ष्य, कृष्ण-लीला का वर्णन तथा उसके द्वारा अपनी कृष्ण-भक्ति एवं प्रपत्ति-भावना की अभिव्यक्ति करना था। उन्होंने काव्य को माध्यम बनाकर वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार भी किया। इस प्रकार सूर ने अपनी काव्य-प्रतिभा को काव्य-सृजन का आधार न बनाकर, 'भक्ति-दर्शन' का आधार बनाया। आशय यह कि सूरदास का काव्य 'वैष्णव धर्म' द्वारा पुष्ट है, 'कवि धर्म' द्वारा नहीं। वे अपने आप को कवि के स्थान पर कृष्ण-भक्त कहलवाना ही अधिक पसंद करते हैं। अपने पदों के अंत में 'सूर के प्रभु' द्वारा वे अपने आप को कृष्ण-भक्त के रूप में

घोषित करते हैं। परंतु फिर भी उनकी अनूठी काव्य-प्रतिभा इन पदों में मुखरित हो उठती है,और सौन्दर्य तथा दर्शन अथवा सौन्दर्य एवं भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय उनके काव्य में दिखाई देता है।

इसके विपरीत निरालाजी मूलत: भक्त नहीं कवि हैं। वे कवि-धर्म द्वारा परिचालित होते हैं,किसी धार्मिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों द्वारा नहीं। उनके गीतों में सगुण ब्रह्म का रूप देखा जा सकता है,परंतु उसकी लीलाओं के वर्णन का आग्रह नहीं। परंतु इतना अवश्य है कि सूरदास के सौन्दर्य-वर्णन में दर्शन का जो अनूठा समन्वय मिलता है,वह निरालाजी के काव्य में भी देखा जा सकता है।

गो०तुलसीदास,निरालाजी के लिये,सदा आदर्श कवि के रूप में रहे। वस्तुत: विद्वानों के अध्ययन तथा उनकी खोज से स्पष्ट है कि तुलसी का जीवन कठोर संघर्ष से गुज़रा,और उनके विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व में प्रौढ़ विचारक का रूप निर्माण करने में,उनके जीवन की करुणाजन्य परिस्थितियां एवं संघर्ष के अतिरिक्त तत्कालीन भारत की सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक (Socio-Politico-Religious) परिस्थिति भी कारणभूत रहीं। निरुपाय,करुणा,संघर्षमय जीवन का अनुभव,सबसे अधिक प्रिय पत्नी द्वारा अपमान,तथा उसके द्वारा उद्बुद्ध किये जाने पर,तुलसी द्वारा मन-वचन-कर्म से श्रीराम की शरणागति स्वीकार करना,तथा उनकी भक्ति में लीन हो जाना, अत्यन्त स्वाभाविक था। परंतु एक विद्वान एवं अध्यवसायी सचेत नागरिक होने के कारण उनका लक्ष्य मात्र 'स्व' के कल्याण पर ही न रहकर,समस्त भारत के उत्थान एवं कल्याण पर भी टिका। अतएव स्वोत्थान के हेतु जिस प्रेरणा एवं शक्ति के स्रोत का उन्होंने आधार लिया,उसीको जन-जागरण के हेतु भी

उपयोगी बनाने का निर्धार किया । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विश्रृंखलता तथा अस्तव्यस्तता को देखकर, उन्होंने जन-जीवन तथा जन-मानस में एकता एवं सुसंवादिता उत्पन्न करना अधिक श्रेयस्कर समझा । परिणामस्वरूप एक समन्वयात्मक जीवन-दृष्टि के आधार पर तुलसीदास ने भारतीय जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी ।

उपरोक्त महत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये तुलसीदासजी ने भक्ति-ज्ञान-कर्म में समन्वय स्थापित करना प्रथम कर्त्तव्य समझा । परंतु फिर भी गूढ़ योग-साधना, कोरे दर्शन, तथा हानिकारक धार्मिक सम्प्रदायों से त्रस्त भारतीय जनता को उबारने के लिये उन्होंने भक्ति पर ही विशेष बल दिया। इस भक्ति-भावना को पुष्ट करने तथा उसे निश्चित स्वरूप देने के लिये तुलसी ने दर्शन का आधार लिया । दर्शनाभिमुख होकर ही वे भक्ति की प्रौढ़ एवं सुनिश्चित व्याख्या कर सके । इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि उन्होंने एक सुचिन्तित दार्शनिक दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया था । जन-मानस में भक्ति का संचार कोरे दार्शनिक सिद्धान्तों के उपदेश से संभव नहीं था, अतएव उन्होंने जनभाषा के माध्यम से काव्य को उक्त साध्य का साधन बनाया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि भक्ति ने उन्हें कवि बनाया ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है -

१) तुलसीदास मूल रूप से भक्त थे, तथा ईश्वर भक्ति एवं उसका जनभमानस में संचार, उनका साध्य था ।

२) उक्त साध्य की पुष्टि एवं पूर्णता के हेतु उन्होंने सुकि सुचि-

सुविचारित एवं सुव्यवस्थित दर्शन का आधार लिया ।

३) कोरे उपदेश या प्रवचन को छोड़कर, उक्त कठिन एवं जटिल साध्य के हेतु उन्होंने काव्य को साधन बनाया, जिससे यह स्पष्ट अवश्य होता है कि उनमें महान् काव्य-प्रतिभा थी । परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि उनके काव्य का दार्शनिक पक्ष मूलत: भक्ति को पुष्ट करने के लिये है, काव्य को पुष्ट करने के लिये नहीं; यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से उसके द्वारा काव्य का उपकार हुआ है ।

निरालाजी का जीवन भी संघर्षमय तथा अभावग्रस्त रहा, वे भी अपने समय की सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक परिस्थिति से दुखी होकर, रचनात्मक कार्य के हेतु सक्रिय हुए, परंतु तुलसीदासजी की तरह पत्नी से प्रेरणा प्राप्त कर वे भक्त नहीं बने, कवि बन गये । यद्यपि उन्होंने भी सगुण राम को तथा तुलसी के समान प्रपत्तिभाव को काव्य में स्थान दिया है, परंतु मूलत: वे कवि ही रहे । उन्होंने भी जनभाषा द्वारा जन-समाज में, अपनी सुविचारित दार्शनिक दृष्टि के आधार पर जन-जागृति के महत् उद्देश्य की पूर्ति का लक्ष्य रखा । परंतु इन सभी कार्यों में उनका कवि-मानस सदैव जागरूक एवं प्रमुख रहा । वे भी साधक थे, भक्ति की भावना ने उन्हें भी द्रवीभूत किया था, परंतु उनका साध्य सदा काव्य-सृजन ही रहा । तुलसीदासजी मात्र प्रपत्तिवादी रूप में देखे जा सकते हैं, परंतु निरालाजी उनके समान प्रपत्तिवादी होने के साथ, कबीर की तरह ज्ञानोन्मुख रहस्यवादी यक (Mystic) भी थे, अत: इस दृष्टि से निरालाजी का विशिष्ट रूप देखा जा सकता है । सूर या तुलसी केवल सगुण भक्त थे, जब कि निरालाजी निर्गुण संत एवं सगुण भक्त दोनों थे, अत: उन्हें 'संत-भक्त' कहा जा सकता है ।

आशय यह कि निरालाजी के काव्य में सूर और तुलसी का ही विकासात्मक रूप दिखाई देने पर भी, वे अपने आप में दोनों की अपेक्षा विशिष्ट प्रमाणित होते हैं ।

रीतिकालीन कवि देव और घनानन्द ने अपने काव्य में विशिष्ट जीवन-दृष्टि का परिचय देने का प्रयास किया है, परंतु देव में फिर भी शृंगारिकता, तथा रीतिकालीन आचार्यत्व का आग्रह अधिक है । निरालाजी में शृंगार कम नहीं है, और काव्य में भाव तथा रूप में उन्होंने जो नवीनताएं प्रदान की हैं, वे उनके आचार्यत्व की ओर संकेत करने के लिये पर्याप्त हैं । परंतु निरालाजी इसी में नहीं खो गये हैं, उनकी दृष्टि में काव्य के साथ जीवन और संस्कृति के मूल्यों का रक्षण एवं उनका विकास प्रमुख लक्ष्य है । घनानन्द ने अपनी प्रेम-भावना को दिव्यता प्रदान करने का प्रयास किया है, परंतु उनके काव्य में उसीकी प्रमुखता हो जाने के फलस्वरूप वे केवल एक ही दिशा में विकास करते हुए दिखाई देते हैं । निरालाजी ने भी प्रेम के दिव्य रूप का अनुभव किया था, परंतु उन्होंने उस उदात्त प्रेम-भावना की अत्यन्त व्यापक एवं मानवतावादी अभिव्यक्ति की है । स्वामी विवेकानन्द की प्रेम-भावना का प्रभाव इसमें देखा जा सकता है । परंतु रीतिकालीन काव्य की शास्त्रीयता का विकास निश्चय ही निरालाजी के काव्य में दृष्टव्य है । भक्तिकाल की वैचारिक प्रौढ़ता तथा रीतिकाल की काव्यात्मक प्रौढ़ता का समन्वयात्मक विकास निराला-काव्य में देखा जा सकता है । अतः इस दृष्टि से भी निरालाजी का वैशिष्ट्य प्रमाणित होता है ।

आधुनिक काल के अन्तर्गत भारतेन्दु तथा श्री मै०गुप्त के राष्ट्रीयता-दर्शन का अत्यन्त प्रौढ़ एवं कलात्मक रूप विकास निराला-काव्य में सहज

रूप से हुआ है ।

२० वीं शताब्दी के उक्त राष्ट्रीयतावादी दर्शन के अतिरिक्त अन्य सामाजिक दर्शनों ने भी निरालाजी को प्रभावित किया । विशेष रूप से मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवादी दर्शन ने अन्य कवियों के समान इन्हें भी नयी वैचारिक भूमि प्रदान की । परंतु निरालाजी ने उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया । उनके समाजवादी अथवा प्रगतिवादी दर्शन की विशिष्टता इस रूप में देखी जा सकती है कि, उन्होंने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद (Dialectical-Materialism) और भारत के अद्वैतवादी-अध्यात्मवाद को समन्वित करने का प्रयास किया । अर्थात् उन्होंने मार्क्स के द्वैतवाद को भी अद्वैत की भूमि पर, ~~उठाना~~ लाना चाहा । इसके अतिरिक्त फ्रायड के मनोविज्ञान - दर्शन की झलक भी निराला-काव्य में देखी जा सकती है । यद्यपि उसमें उक्त दर्शन के स्वस्थ तथा सुविचारित तत्वों का रूप ही दृष्टिगत होता है ।

इस प्रकार निरालाजी ने मार्क्स के आधार पर, मानव जाति एवं मानव-जीवन को मात्र बाह्य, सामाजिक एवं परिस्थितिजन्य परिबलों के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं देखा, अपितु फ्रायड के आधार पर मानसिक जगत में स्थित मनोबलों के विश्लेषण द्वारा, मानव की आभ्यन्तर चेतना की सूक्ष्म हलचल का भी अध्ययन किया । निरालाजी के परवर्ती काव्य में, मनोविज्ञान-दर्शन पर आधारित `सुररियालिज्म`[१] के कई तत्वों की ओर विद्वानों ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । यद्यपि यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि निरालाजी ने इस वाद विशेष को ध्यान में रखकर काव्य-रचना नहीं की थी ।

आशय यह कि निरालाजी के काव्य में समाजवादी विचारधारा

१- माचवे प्रभाकर- महाकवि निराला- (सं०आ०जा०शास्त्री)-पृष्ठ-

के साथ मनोवैज्ञानिक दर्शन भी दृष्टिगत होता है,परंतु विशिष्टता यह कि अन्य प्रगतिवादी कवियों के समान न उनमें समाजवाद के राजनैतिक पक्ष का आग्रह मिलता है,और न कतिपय आधुनिक कवियों के समान मनोविज्ञान की कुंठाओं का चित्रण ही दृष्टिगत होता है ।अत: इन दर्शनों की निरालाजी ने काव्यपरक अभिव्यक्ति की है,वादपरक नहीं । इन दर्शनों के अतिरिक्त , `अरविन्द-दर्शन` का प्रभाव निराला-काव्य में नहीं दिखाई देता ।

५- उपसंहार :

उपरोक्त संपूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि निरालाजी का काव्य,हिन्दी की दार्शनिक काव्य परम्परा का ही नवीन, प्रौढ़ एवं दृढ़ विकास है । वे अद्वैतवादी कवि हैं,यद्यपि उनमें अन्य दर्शनों की विविध छटाएं भी मिलती हैं,परंतु दर्शन संबंधी संदिग्धता कदापि नहीं मिलती । उनके काव्य में दर्शन का पूरा निर्वाह मिलता है,असंगति नहीं मिलती । आशय यह कि वे हिन्दी की दार्शनिक कवि-परम्परा की ही एक प्रमुख कड़ी हैं,तथा उनका काव्य दर्शनिक काव्य परम्परा की न नवीन परिणति है । अतएव हिन्दी की दार्शनिक कवि-परम्परा को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि,निरालाजी का चिन्तन वेदान्तपरक है,साधना योगपरक - जो शक्ति की ओर उन्मुख है,तथा उनका हृदय वैष्णव-भावना से युक्त है,जिसमें बंगाल की वैष्णव-परम्परा का योगदान है । परंतु इनका समन्वित रूप उनके `व्यक्तित्व` में है,और वह उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता है,तथा यह वैशिष्ट्य अभिनव है। इसके अतिरिक्त उनकी वैचारिक संघटना में मार्क्स तथा फ्राइड के आधुनिक तत्व

भी अनुस्यूत हैं,अत: इस दृष्टि से निरालाजी के व्यक्तित्व एवं काव्य में प्राचीन तथा अर्वाचीन का समुचित समन्वय हुआ है । यदि वे एक ओर प्राचीन से बंधे हुए नहीं हैं,तो दूसरी ओर नवीन के अतिशय आग्रही भी नहीं हैं । अत: इस दृष्टि से भी हिन्दी के अन्य दार्शनिक कवियों की तुलना में निराला जी की विशिष्टता प्रमाणित होती है ।

उपरोक्त अध्ययन एवं विवेचन के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित हुआ माना जा सकता है कि निरालाजी न केवल खड़ी-बोली हिन्दी के नकिन्तु प्रथम प्रौढ़ एवं श्रेष्ठ दार्शनिक कवि हैं,अपितु वे समूची हिन्दी-काव्य परम्परा के एक महान् कवि भी हैं । अतएव इस अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में,अगले अध्याय में निरालाजी की विविध दार्शनिक मान्यताओं का अध्ययन एवं अनुशीलन किया जायगा ।

----- ----- ----- -----